E-ISSN: 3049-0707, Volume 1 | Issue 2 | (Apr – Jun 2024)

प्रेमचन्द की कहानियों में यथार्थवाद का स्वरूप

अमित कुमार
हिन्दी विभाग, कला संकाय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रस्तावना

प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य के ऐसे महान साहित्यकार हैं, जिन्होंने साहित्य को केवल कल्पना और मनोरंजन का साधन न मानकर उसे समाज परिवर्तन का औज़ार बनाया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जब हिन्दी साहित्य आदर्शवाद और भावुकता की सीमा में बँधा हुआ था, तब प्रेमचन्द ने उसे यथार्थ की कठोर ज़मीन पर उतारा। वे हिन्दी कहानी और उपन्यास को एक नई सामाजिक चेतना, संवेदना और उद्देश्य के साथ प्रस्तुत करने वाले पहले रचनाकारों में से एक माने जाते हैं। प्रेमचन्द का साहित्य मुख्यतः ग्रामीण भारत के जीवन, उसकी समस्याओं, विसंगतियों और संघर्षों का यथार्थ चित्रण करता है। उन्होंने अपने पात्रों को गाँव की मिट्टी से उठाया, जो आम जनजीवन की पीड़ा, शोषण, अभाव और संघर्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी कहानियाँ जैसे *पूस की रात, कफन, सद्गति* और *ईदगाह* आदि में समाज के निचले तबके के जीवन का सहज और मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है।

यथार्थवाद साहित्य की वह प्रवृत्ति है, जिसमें जीवन की घटनाओं, चरित्रों और परिस्थितियों का चित्रण उस रूप में किया जाता है, जैसा वह वास्तव में होता है। इसमें अलंकरण, कल्पना या अतिशयोक्ति की बजाय जीवन की सच्चाई, कठिनाइयाँ, संघर्ष और विरोधाभासों को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रेमचन्द ने यथार्थवाद को केवल एक साहित्यिक तकनीक न बनाकर उसे सामाजिक सुधार और जनचेतना का माध्यम बनाया।

इस शोध पत्र का उद्देश्य प्रेमचन्द की कहानियों में विद्यमान यथार्थवाद की प्रकृति, गहराई और उसकी सामाजिक भूमिका का विश्लेषण करना है। साथ ही यह भी स्पष्ट करना है कि किस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने साहित्य के माध्यम से तत्कालीन भारतीय समाज की जटिलताओं को उद्घाटित किया और हिन्दी कथा-साहित्य को यथार्थवादी दिशा प्रदान की। वर्तमान संदर्भ में जब साहित्य पुनः समाज से जुड़ने की आवश्यकता अनुभव कर रहा है, प्रेमचन्द का यथार्थवाद विशेष रूप से प्रासंगिक हो जाता है।

यथार्थवाद की अवधारणा

यथार्थवाद साहित्य की एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसमें जीवन की घटनाओं, पात्रों, समस्याओं और परिवेश का चित्रण यथासंभव वास्तविकता के धरातल पर किया जाता है। इसमें लेखक काल्पनिक, अतिशयोक्तिपूर्ण या अलंकारिक तत्वों से बचते हुए समाज और व्यक्ति के वास्तविक जीवन को उसकी जटिलताओं, संघर्षों, विरोधाभासों और कठोर सच्चाइयों सहित प्रस्तुत करता है। यथार्थवाद केवल बाह्य परिस्थितियों का चित्रण नहीं करता, बल्कि मनुष्य की आंतरिक मानसिकता, सामाजिक ढाँचे और आर्थिक संरचना को भी अनावृत्त करता है।

साहित्य में यथार्थवाद की शुरुआत यूरोप में 19वीं शताब्दी में हुई, जब लेखकों ने रूमानी आदर्शवाद और कल्पनाशीलता के विरुद्ध जाकर आम जनजीवन की सच्चाइयों को साहित्य में स्थान देना शुरू किया। फ्रांसीसी लेखक बाल्ज़ाक, रूसी लेखक तोल्स्तॉय और गोर्की जैसे रचनाकार यथार्थवादी साहित्य के प्रमुख नाम हैं। हिन्दी साहित्य में यह प्रवृत्ति बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में विशेष रूप से प्रेमचन्द के माध्यम से प्रबल हुई।

भारतीय सन्दर्भ में यथार्थवाद की अवधारणा थोड़ी भिन्न है, क्योंकि यहाँ सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना अधिक जटिल और विविधतापूर्ण है। जातिवाद, आर्थिक विषमता, स्त्री की स्थिति, धार्मिक पाखंड, किसान और मजदूरों का शोषण जैसे मुद्दे भारतीय यथार्थवाद के केन्द्र में हैं। प्रेमचन्द ने इन्हीं पहलुओं को अपनी कहानियों और उपन्यासों में गहराई से उकेरा। उन्होंने गाँवों, किसानों, स्त्रियों और दलितों की पीड़ा को न केवल चित्रित किया, बल्कि उसे समाज की सामूहिक चेतना का हिस्सा बनाया।

प्रेमचन्द के लेखन का काल 1907 से 1936 तक माना जाता है, जो भारत में राष्ट्रीय चेतना, स्वतंत्रता संग्राम और सामाजिक आंदोलनों का युग था। इस समय समाज में गहरी असमानताएँ, गरीबी, जातिगत भेदभाव और औपनिवेशिक शोषण मौजूद था। आर्थिक रूप से भारतीय जनता विशेषकर ग्रामीण जनजीवन अत्यंत कष्टमय था। राजनीतिक रूप से यह स्वाधीनता संग्राम का दौर था, जिसमें गांधीवादी विचारधारा, स्वदेशी आंदोलन और सामाजिक सुधार की माँगें उभर रही थीं। इन्हीं समकालीन परिस्थितियों में प्रेमचन्द ने यथार्थवाद को एक वैचारिक और रचनात्मक रूप दिया।

उनकी कहानियाँ सामाजिक यथार्थ की गहराई को उजागर करती हैं न सिर्फ समस्याओं का चित्रण करती हैं, बल्कि समाज में परिवर्तन की आकांक्षा को भी स्वर देती हैं। इसीलिए प्रेमचन्द का यथार्थवाद केवल दर्शक नहीं, बल्कि सक्रिय हस्तक्षेप करने वाला यथार्थवाद है।

प्रेमचन्द की कहानियों में यथार्थवादी दृष्टिकोण

प्रेमचन्द का कथा-साहित्य यथार्थ के विविध पक्षों का ऐसा दस्तावेज़ है, जिसमें तत्कालीन भारतीय समाज का संपूर्ण जीवन-चित्र उभर कर सामने आता है। उन्होंने केवल घटनाओं का नहीं, बल्कि उन घटनाओं के पीछे के सामाजिक, आर्थिक और नैतिक ताने-बाने का गहन विश्लेषण किया। प्रेमचन्द के यथार्थवाद की विशेषता यह है कि उसमें जीवन के कटु, कुरूप और पीड़ादायक पक्षों को भी उसी ईमानदारी से प्रस्तुत किया गया है, जिस तरह से वे समाज में विद्यमान थे।

प्रेमचन्द का यथार्थ बहुस्तरीय है। उनकी कहानियाँ समाज की नींव में जमी विषमताओं, अन्याय और शोषण को उजागर करती हैं। उन्होंने आर्थिक शोषण, जातिगत भेदभाव, स्त्री की दुर्दशा और नैतिक मूल्यों के पतन को जिस संवेदनशीलता और निर्भीकता से चित्रित किया है, वह उन्हें अपने समकालीनों से अलग करता है। प्रेमचन्द का यथार्थ केवल समाज की आलोचना नहीं करता, बल्कि उसके भीतर एक मानवीय संवेदना और परिवर्तन की इच्छा भी पिरोता है।

प्रेमचन्द की कहानियों का केंद्रीय फलक ग्रामीण भारत है। उन्होंने गाँवों की जटिलताओं, वहाँ की गरीबी, अंधविश्वास, वर्ग भेद और संघर्षों को अत्यंत सजीवता से चित्रित किया। उनकी दृष्टि केवल खेतों और बैलों तक सीमित नहीं थी, बल्कि उन्होंने किसानों, मजदूरों, स्त्रियों और दलितों के आंतरिक जीवन को भी गहराई से उकेरा।

प्रेमचन्द ने स्पष्ट रूप से दिखाया कि किस प्रकार समाज में एक वर्ग विशेष (भूस्वामी, महाजन, पुरोहित आदि) अन्य वर्गों (किसान, मज़दूर, निम्न जातियाँ) का निरंतर शोषण कर रहा है। यह वर्गीय संघर्ष उनकी कहानियों में केवल परिस्थिति नहीं, बल्कि एक सतत संघर्षशील वास्तविकता के रूप में सामने आता है।

प्रेमचन्द की कहानियाँ स्त्री पात्रों के माध्यम से पितृसत्तात्मक व्यवस्था की कठोरता को उजागर करती हैं। उन्होंने स्त्री को केवल सहानुभूति का पात्र नहीं बनाया, बल्कि उसकी जिजीविषा, आत्मबल और संघर्ष को भी प्रमुखता दी। *प्रेमा, निर्मला, सेवासदन* जैसे उपन्यासों के साथ-साथ कई कहानियाँ भी स्त्री की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालती हैं।

पूस की रात – किसान की गरीबी और संघर्ष

यह कहानी किसान जीवन की मार्मिक कथा है, जिसमें हल्कू नामक किसान ठंड की रात खेत की रखवाली करते हुए थक हारकर अलाव के पास सो जाता है। उसके खेतों को जानवर चर जाते हैं, लेकिन हल्कू और उसकी पत्नी के लिए रज़ाई अधिक ज़रूरी है। यह कहानी बताती है कि किस तरह किसानों की मूलभूत आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं होतीं। गरीबी का यह यथार्थ भावुकता से नहीं, ठोस और कटु जीवन-सत्य के रूप में सामने आता है।

कफ़न – निर्धनता और नैतिक मूल्य

'कफ़न' प्रेमचन्द की सबसे चर्चित और विवादास्पद कहानी है, जिसमें घीसू और माधव नामक पिता-पुत्र अपनी बहू/पत्नी के मरने पर भी संवेदनहीन बने रहते हैं। वे उसके कफ़न के लिए मिला पैसा शराब में उड़ा देते हैं। यह कहानी एक ओर निर्धनता की चरम स्थिति दिखाती है, वहीं दूसरी ओर नैतिक मूल्यों के ह्रास की ओर भी इशारा करती है। यहाँ यथार्थ इतना तीखा है कि वह पाठक को झकझोर देता है।

सद्गति – जातिवादी यथार्थ

यह कहानी दलित जीवन और ब्राह्मणवादी पाखंड का अमानवीय चित्र प्रस्तुत करती है। दुखू नामक चमार अपनी बेटी की शादी के लिए एक ब्राह्मण से पूजा कराने आता है, लेकिन वह उसे मरने तक श्रम कराता है और अंततः वह वहीं मर जाता है। प्रेमचन्द ने इस कहानी में ब्राह्मणवाद की कठोर आलोचना करते हुए सामाजिक यथार्थ को अत्यंत निर्भीकता से प्रस्तुत किया।

नमक का दारोगा – भ्रष्टाचार और ईमानदारी

इस कहानी में प्रेमचन्द ने प्रशासनिक तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार और ईमानदारी के संघर्ष को उजागर किया है। रतन नामक ईमानदार युवक को उसके कर्तव्यपरायण व्यवहार के लिए दंडित किया जाता है, लेकिन अंततः उसकी ईमानदारी विजयी होती है। यह कहानी उस यथार्थ को दर्शाती है, जहाँ आदर्शवाद और यथार्थवाद का द्वंद्व स्पष्ट दिखाई देता है।

पात्रों में यथार्थ का चित्रण

प्रेमचन्द की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता उनके पात्रों का यथार्थपूर्ण चित्रण है। उनके पात्र न तो काल्पनिक होते हैं, न ही अतिरंजित आदर्शवादी; वे समाज के उसी वर्ग से उठाए गए हैं, जिनका जीवन संघर्षों, अभावों और शोषण की वास्तविकता से जूझता है। प्रेमचन्द ने साहित्य को राजाओं-महाराजाओं, देवताओं और वीरों की दुनिया से निकालकर आम जन की ज़मीन पर खड़ा किया, और वहीं से उन्होंने अपने पात्र गढ़े – किसान, मजदूर, स्त्रियाँ, पुरोहित, महाजन, दरोगा, दलित, नारी और बच्चे तक।

किसान और मजदूर वर्ग प्रेमचन्द की कहानियों के केंद्रीय पात्र हैं। *पूस की रात* का हल्कू ठंड से मरते खेत की रखवाली नहीं करता, क्योंकि वह पहले ही गरीबी से लड़ रहा है – यह यथार्थ केवल करुणा नहीं, व्यवस्था पर तीखा प्रश्न है। *कफ़न* के घीसू और माधव जैसे पात्र समाज की उस मानसिकता का प्रतिबिंब हैं, जहाँ निरंतर शोषण के बाद नैतिकता भी विकृत हो जाती है।

स्त्रियाँ, विशेषतः गरीब, ग्रामीण और दलित वर्ग की, प्रेमचन्द के साहित्य में केवल करुणा की प्रतीक नहीं, संघर्ष और आत्मबल की मूर्ति भी हैं। *सेवासदन* और *निर्मला* जैसी कहानियों में स्त्री की सामाजिक स्थिति, विवाह संस्था की विडंबनाएँ और लैंगिक अन्याय को मार्मिकता से चित्रित किया गया है।

प्रेमचन्द ने ब्राह्मणों और महाजनों जैसे सत्ताधारी पात्रों को भी यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया है। वे सिर्फ खलनायक नहीं, बल्कि उस व्यवस्था के प्रतिनिधि हैं, जो समाज में भेदभाव और शोषण को संस्थागत बनाती है। *सद्गति* में पंडित जी का व्यवहार इस बात का उदाहरण है कि कैसे धर्म का इस्तेमाल निम्न वर्ग को दबाने में होता है।

प्रेमचन्द के पात्र सपने भी देखते हैं, लेकिन वे जानते हैं कि उनकी हकीकत उन्हें बार-बार इन सपनों से टकरा देती है। उनकी विवशता केवल व्यक्तिगत नहीं, सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं की देन है। इन पात्रों के माध्यम से प्रेमचन्द ने न केवल तत्कालीन समाज का आईना दिखाया, बल्कि यह भी स्पष्ट किया कि साहित्य समाज की सच्ची तस्वीर तब ही बन सकता है जब उसमें आमजन का जीवन-यथार्थ हो।

इन पात्रों का यथार्थ समाज में आज भी देखा जा सकता है – उनके चेहरे बदल गए हैं, लेकिन स्थितियाँ कमोबेश वैसी ही हैं। इसीलिए प्रेमचन्द के पात्र न केवल उस समय के समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं, बल्कि कालजयी बन जाते हैं।

भाषा और शैली में यथार्थवाद

प्रेमचन्द की कहानियों में यथार्थवादी दृष्टिकोण केवल विषयवस्तु या पात्रों तक सीमित नहीं है, बल्कि उनकी भाषा और शैली में भी यह गहराई से विद्यमान है। उन्होंने उस समय हिन्दी को एक ऐसी सरल, सहज और प्रभावशाली अभिव्यक्ति दी, जो आमजन की भाषा थी। न तो उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ क्लिष्ट हिन्दी थी और न ही उर्दू की शायरी से भरी हुई शैली; यह एक ऐसी बोलचाल की भाषा थी, जो सीधे पाठक के अनुभव से जुड़ती है।

प्रेमचन्द की भाषा में मुहावरे, लोकोक्तियाँ, कहावतें और ग्रामीण जीवन की अभिव्यक्तियाँ बड़ी ही स्वाभाविकता से आती हैं। उदाहरणस्वरूप, *पूस की रात* में हल्कू की पत्नी कहती है, “जाकर लोटे से मुँह धो लो, अब तो ठंड भी पसीना छुड़ा दे रही है” यह संवाद केवल तापमान नहीं बताता, बल्कि ग्रामीण जीवन की ठिठुरन को भी जीवंत करता है।

उनकी कहानियों के संवादों में जीवन्तता और स्वाभाविकता इतनी प्रबल है कि पात्र पाठक के सामने सजीव हो उठते हैं। पात्रों की भाषा वही है, जो वे अपने परिवेश में बोलते हैं – यह यथार्थ को विश्वसनीय और सजीव बनाता है।

प्रेमचन्द की शैली चित्रात्मक है। वे शब्दों से दृश्य रचते हैं – खेत, झोपड़ी, चूल्हा, बाजार, मंदिर – सब आँखों के सामने उतर आता है। उनका वर्णन न तो अति अलंकारिक है, न ही सपाट; उसमें एक सहज प्रवाह और संवेदना है जो पाठक को भीतर तक छू लेती है।

इस प्रकार, प्रेमचन्द की भाषा और शैली न केवल साहित्यिक सौंदर्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि उनके यथार्थवाद की आत्मा को भी स्पष्ट रूप से प्रकट करती है।

प्रेमचन्द की कहानियाँ: आदर्शवाद बनाम यथार्थवाद

प्रेमचन्द को सामान्यतः यथार्थवादी लेखक माना जाता है, परंतु उनके साहित्य में केवल कटु यथार्थ ही नहीं, आदर्शवाद की भी एक सशक्त धारा विद्यमान है। उन्होंने जहाँ एक ओर समाज की विषमताओं, शोषण, गरीबी और अन्याय का यथार्थ चित्रण किया, वहीं दूसरी ओर मानवीय मूल्यों, करुणा, त्याग और नैतिकता को भी प्रमुखता दी। यही द्वंद्व यथार्थ और आदर्श का उनके साहित्य को गहराई और व्यापकता प्रदान करता है।

यह कहना उचित नहीं होगा कि प्रेमचन्द पूरी तरह यथार्थवादी थे। दरअसल, वे यथार्थ को महज निराशाजनक या स्थिर नहीं मानते थे। उनका यथार्थ गतिशील और परिवर्तनशील था, जिसमें आदर्श की संभावना निहित थी। उन्होंने जीवन की कठोर सच्चाइयों को स्वीकार करते हुए भी उसमें सुधार की आकांक्षा को बनाए रखा।

प्रेमचन्द की कई कहानियाँ, जैसे ‘ईदगाह’, इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करती हैं। इसमें चार साल का हमीद अपनी इच्छा का त्याग कर दादी के लिए चिमटा खरीदता है यह यथार्थ के धरातल पर स्थित होते हुए भी नैतिक आदर्शवाद की प्रेरणादायक मिसाल है। यह आदर्शवाद कल्पना पर आधारित नहीं, बल्कि संवेदना और परिस्थिति की गहराई से निकला हुआ है।

इसी तरह *नमक का दारोगा* में रतन की ईमानदारी अंततः मान्यता प्राप्त करती है यह आदर्शवादी अंत एक प्रकार की नैतिक विजय को दर्शाता है, जो यथार्थ को पराजित नहीं करता, बल्कि उसे दिशा देता है।

कई आलोचकों ने प्रेमचन्द के इस समन्वयवादी दृष्टिकोण की प्रशंसा की है। रामविलास शर्मा ने कहा कि प्रेमचन्द का यथार्थवाद “जनसाधारण के जीवन से जुड़ा हुआ है, जो सुधार और बदलाव की आकांक्षा के साथ आता है।” नामवर सिंह के अनुसार प्रेमचन्द का यथार्थवाद “सांस्कृतिक आदर्श की जमीन पर खड़ा है।”

इस प्रकार प्रेमचन्द की कहानियाँ न तो शुद्ध यथार्थ की पक्षधर हैं, न ही काल्पनिक आदर्श की। वे दोनों के बीच एक संतुलन बनाकर साहित्य को सामाजिक उद्देश्य और नैतिक ऊँचाई प्रदान करती हैं। यही कारण है कि उनका यथार्थ नीरस नहीं, बल्कि प्रेरणादायक और परिवर्तनशील है।

निष्कर्ष

प्रेमचन्द का साहित्य विशेष रूप से उनके कथा-साहित्य में यथार्थवाद की गहरी और विविध प्रस्तुति देखने को मिलती है। उन्होंने न तो जीवन को केवल पीड़ा और अभाव का चित्र बना कर छोड़ा, और न ही उसे कल्पना और आदर्श के रंगों से सजाया। बल्कि उन्होंने यथार्थ को उसी रूप में चित्रित किया, जैसा वह समाज में विद्यमान था कठोर, विषम, लेकिन परिवर्तनशील। उनकी कहानियों में सामाजिक यथार्थ की अनेक परतें दिखाई देती हैं आर्थिक शोषण, जातिगत भेदभाव, स्त्री-विरोधी मानसिकता, प्रशासनिक भ्रष्टाचार और नैतिक पतन सब कुछ एक समर्पित सामाजिक दृष्टि के साथ चित्रित हुआ है।

प्रेमचन्द का यथार्थवाद सिर्फ समय-विशेष तक सीमित नहीं है। आज के भारत में जब आर्थिक विषमता, जातीय हिंसा, लैंगिक असमानता और नैतिक संकट जैसे मुद्दे फिर से उभरते दिखाई देते हैं, प्रेमचन्द की कहानियाँ और अधिक प्रासंगिक हो उठती हैं। उनका साहित्य वर्तमान को समझने और बदलने के लिए एक सामाजिक दृष्टिकोण प्रदान करता है।

प्रेमचन्द ने केवल यथार्थ का चित्रण नहीं किया, बल्कि समाज को आईना दिखाकर उसमें सुधार की चेतना भी उत्पन्न की। वे मात्र लेखक नहीं, बल्कि जन-चिंतक थे, जिन्होंने साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाया। उनकी रचनाएँ हृदय को स्पर्श करती हैं, तो मस्तिष्क को झकझोरती भी हैं।

यथार्थ के चित्रण में प्रेमचन्द की विशिष्टता इस बात में है कि उन्होंने शोषित, वंचित और उपेक्षित वर्गों की आवाज़ को साहित्यिक स्वर दिया। उन्होंने जिन पात्रों को गढ़ा, वे केवल साहित्यिक कल्पना नहीं, बल्कि समाज की सच्ची प्रतिच्छायाएँ हैं। उनकी भाषा, उनकी शैली, उनकी दृष्टि सभी कुछ इस बात को प्रमाणित करते हैं कि प्रेमचन्द भारतीय यथार्थवाद के सबसे मजबूत स्तम्भ हैं।

अंततः, प्रेमचन्द का यथार्थवाद केवल साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि एक सामाजिक क्रांति की चेतना है, जो आज भी हमें सोचने, महसूस करने और बदलाव की ओर प्रेरित करने की शक्ति रखती है। यही उनकी अमरता और आधुनिकता का प्रमाण है।

संदर्भ

1. प्रेमचन्द। (2005)। *मानसरोवर (खण्ड 1–8)*। राजकमल प्रकाशन।
2. प्रेमचन्द। (2004)। *गोदान*। राजपाल एंड संस।
3. प्रेमचन्द। (2008)। *कफन और अन्य कहानियाँ*। लोकभारती प्रकाशन।

4. शर्मा, रामविलास। (1992)। *प्रेमचन्द और उनका युग*। राजकमल प्रकाशन।

5. सिंह, नामवर। (1983)। *कहानी, नई कहानी: प्रेमचन्द से मुक्तिबोध तक*। राजकमल प्रकाशन।

6. द्विवेदी, हजारीप्रसाद। (1974)। *प्रेमचन्द: साहित्य और समाज*। किताब महल।

7. लाल, ब्रजमोहन। (2001)। *हिंदी कहानी का विकास*। भारतीय ज्ञानपीठ।

8. त्रिवेदी, हरीश। (2008)। *औपनिवेशिक सन्दर्भ: अंग्रेज़ी साहित्य और भारत*। परमानेंट ब्लैक।

9. सिन्हा, अंजलि। (2010)। *भारतीय साहित्य में यथार्थवाद: एक आलोचनात्मक अध्ययन*। दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन।

10. गोपाल, मदन। (1995)। *प्रेमचन्द: एक आलोचनात्मक जीवनी*। विकास पब्लिशिंग।

11. टंडन, रेखा। (2009)। *प्रेमचन्द की कहानियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन*। हिंदी बुक सेंटर।

12. भारती, अमित। (2012)। *यथार्थवाद और हिंदी साहित्य*। विश्वविद्यालय प्रकाशन।

13. मिश्रा, सविता। (2015)। *स्त्री विमर्श और प्रेमचन्द*। लोकभारती प्रकाशन।

14. राय, आनंद। (1999)। *हिंदी साहित्य में सामाजिक यथार्थ*। ग्रंथ शिल्पी।